अध्याय–2
राष्ट्रीय सुरक्षाः सैद्धांतिक रूपरेखा

यह अध्याय विशेष रूप से जल–मुद्दों के संदर्भ में भारत की सुरक्षा के लिए खतरे की चिंता के वैचारिक अवधारणा पर केंद्रित है। यह अध्याय गैर–पारंपरिक खतरों के व्यापक ढांचे में 'पानी की कमी की समस्याओं' का पता लगाने के लिए बुनियादी राष्ट्रीय सुरक्षा प्रतिमान का भी विश्लेषण करता है।

सैद्धांतिक रूप से जो कल का समकालीन या आधुनिक था वह आज 'पारंपरिक' हो गया है और जो आज गैर–पारंपरिक (आधुनिक) है वह कल पारंपरिक हो जाएगा। यह समय चक्र है। इसलिए किसी भी अवधारणा, घटना या सिद्धांत को समझने के लिए, 'प्रासंगिकता के मापदंडों' का विश्लेषण करना आवश्यक है, जो कि कई परस्पर क्रियात्मक चर द्वारा अनुकूलित है और यह उस समय की 'सामूहिक धारणा' है।

जल सुरक्षा का तात्पर्य गुणवत्ता, मात्रा और असमान वितरण के संदर्भ में बदलती पानी की स्थितियों के लिए प्रभावी प्रतिक्रिया है।यह अंतर्राज्यीय और अंतर–राज्य स्तरों पर संबंधों को प्रभावित कर सकता है और तनाव में योगदान कर सकता है।भारतीय उपमहाद्वीप में बड़ी संख्या में नदी प्रणालियाँ और कई द्विपक्षीय संधियाँ हैं, लेकिन वे अक्सर प्रचलित राजनीतिक शत्रुता को दर्शाती हैं इसलिए तनाव को हल करने में असमर्थ हैं।

जब भी दो जन्मजात पहचान परस्पर क्रिया करती हैं तो वे संचार के साधन के रूप में इशारों, प्रतीकों और कथनों का आदान–प्रदान करती हैं। ये साधन सुझाव, कथन, सलाह या धमकियों के रूप में हो सकते हैं। एक बहुत ही सरल समझ में 'खतरा' एक प्रकार का संचार है जिसे लक्ष्य (व्यक्तिगत, समूह या राष्ट्र–राज्य) में आशंका, चिंता और अंततः भय के मनोवैज्ञानिक स्थिति बनाने के लिए डिज़ाइन किया गया है। यह स्थिति 'एक' की मदद करती है 'दूसरे' को इस तरह से व्यवहार करने के लिए मजबूर करती है जिसमें 'एक चाहता है कि दूसरा' उसके मन के अनुसार

व्यवहार करे और इस प्रकार लक्ष्य के परिवर्तन के प्रतिरोध को नष्ट कर दे। इस अर्थ में, बल का खतरा जबरदस्ती का एक रूप है क्योंकि इसका उद्देश्य एक अभिनेता द्वारा दूसरे की पसंद पर जानबूझकर और कठोर प्रतिबंध है।

सुरक्षा की अवधारणा:

सुरक्षा बहुत ही व्यापक अवधारणा है।प्रारम्भ में इसे सैन्य एवं यौद्धिक मामलों तक ही सीमित माना गया और विभिन्न चिन्तकों एवं विचारकों ने इसे अपने–अपने तरीके से परिभाषित किया।किन्तु बाद के दशकों में सुरक्षा की एक विस्तृत अवधारणा सामने आई जिसके अन्तर्गत मानवीय सुरक्षा से लेकर वैश्विक सुरक्षा के समस्त पहलू इसमें समाहित हो गये। इसी के साथ–साथ सुरक्षा के विस्तृत आयामों पर भी बहस एवं लेखन होने लगा। इसके बावजूद सुरक्षा की एकमात्र सम्यक एवं सर्वमान्य परिभाषा देना शेष रह गया है। हम इसके लक्षणों से ही इसको परिभाषित करने का प्रयास करते हैं।

सुरक्षा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द सेक्यूरस से हुई है, जिसका अर्थ है, भय से मुक्त अथवा सुरक्षित रहना। हेराल्ड लासवेल (1936) ने बताया है कि सुरक्षा विश्व राजनीति में कौन क्या,कब एवं कैसे प्राप्त करेगा,को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिंका निभाती है।

वाल्टर लिपमैन के अनुसार 'कोई भी राष्ट्र या राज्य उस हद तक सुरक्षित है जब तक कि यदि वह युद्ध न चाहता हो तो उसे अपने मर्म–मूल्यों (राजनैतिक स्वतन्त्रता एवं क्षेत्रीय अखण्डता) का परित्याग न करना पडे, किन्तु यदि उसे चुनौती दी जाय तो युद्ध में विजय के द्वारा उनको रक्षित करने में वह समर्थ हो।

इस तरह हम देखते हैं कि सुरक्षा का परम्परागत दृष्टिकोण केवल राज्य के सैन्य एवं वाह्य खतरो की ओर केन्द्रित था। बाद के विचारकों ने इसमें राज्यों के अन्दरूनी खतरों, समस्याओं, मुद्दों जैसे–सामाजिक,आर्थिक,पर्यावरणीय राजनैतिक,को इसमें शामिल किया। साथ ही साथ परम्परागत सुरक्षा चिंतन सं राज्य अमेरिका, ब्रिटेन या विकसित राज्यों की ओर क्रेन्द्रित था। उनकी सुरक्षा समस्याओं के अनुरूप

था। यह तृतीय विश्व के गरीब राष्ट्रों की समस्याओं को ध्यान देने एवं समाधान पर बिल्कुल नहीं संकेन्द्रित था। 1980 के दशक के बाद सुरक्षा से सम्बन्धित अन्य संकल्पनायें–व्यापक सुरक्षा, सामान्य सुरक्षा, मानव सुरक्षा के आने के बाद यह व्यापकता को प्राप्त हुआ।

मानव सुरक्षा:

वास्तव,में मानव सुरक्षा के बारे में पहला प्रमुख ध्यान बैरी बुजान ने ही अपनी पुस्तक में खींचा। बेरी बुजान के अनुसार– राष्ट्रीय सुरक्षा तीन स्तरों – वैयक्तिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय, से होकर गुजरती हैं। (वाल्ट स्टीफेन एम, द रेनेसा ऑफ सेक्यूरिटी स्टडीज, इंटरनेशनल स्टडीज क्वाटरली 1991, पृ सं 211)

बैरी बुजान ने अपनी पुस्तक 'पीपल, स्टेट्स एण्ड फीयर' में सुरक्षा को प्रभावित करने वाले पाँच प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की जो इस प्रकार है– सैन्य, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय। किन्तु अभी भी सुरक्षा चिंतन के केन्द्र में राज्य ही था, सामान्य नागरिक नहीं। यही कारण है कि इसे मानव सुरक्षा का प्रथम चिंतन नहीं माना गया।

मानव सुरक्षा की संकल्पना मुख्य रूप से संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम रिपोर्ट (1994) से जुड़ी हुई है। इसका मुख्य श्रेय संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम से जुड़े हुए अर्थशास्त्री 'महबूब उल हक्' जिनका 'मानव विकास सूचकांक' एवं 'मानव प्रशासन सूचकांक' के निर्माण में मुख्य योगदान था, को जाता है। 'रिडिफाइनिंग सेक्यूरिटी द ह्यूमन डायमेंशन' नामक भाग में सुरक्षा के चारों मूल प्रश्नों–

- सुरक्षा किसके लिए
- किन मूल्यों के लिए सुरक्षा
- किन खतरों से सुरक्षा
- किन साधनो से सुरक्षा

तथा परम्परागत सुरक्षा के विकल्पों एवं मानव विकास के आवश्यक पूरकों पर प्रकाश डाला गया था। (बाजपेई कांति, ह्यूमन सोसायटीःकांसेप्ट एंड मेजरमेंट, क्रोक

संस्थान समसामयिक पेपर, अगस्त 2000, पृष्ठ 08)

रिपोर्ट के अनुसार मानव सुरक्षा के केन्द्र में व्यक्ति या सामान्य जनता है। मानव सुरक्षा की संकल्पना ' भय से मुक्ति ' एवं 'अभाव से मुक्ति 'पर आधारित है। मानव सुरक्षा में उन मूल्यों को प्राप्त करने की बात की जाती है जो व्यक्ति के दैनिक जीवन में सुरक्षा**,** कल्याण एवं सम्मान के लिए आवश्यक होते हैं। इस रिपोर्ट में परंपरागत सुरक्षा अवधारणा की उन कमियों को रेखांकित किया गया है कि जिन खतरों से सामान्य जनता अपने दैनिक जीवन में रूबरू होती है। इनका उल्लेख परम्परागत सुरक्षा अवधारणा में नहीं है। बहुत से लोगों के लिए रोगों, भूख, बेरोजगारी, अपराध, सामाजिक संघर्ष, राजनीतिक दबाव या उत्पीडन तथा वातावरणीय खतरों से बचाव ही सुरक्षा है। मानव सुरक्षा इस बात से संबंधित है कि जनता समाज में कैसे जीती एवं सांस लेती है ?वह किस प्रकार अपनी सद्इच्छा की पूर्ति करती है? बाजार एवं सामाजिक अवसरों में उसकी कितनी पहुॅच है और वह संघर्ष में रह रही है अथवा शांन्ति में ?रिपोर्ट के अनुसार मानव सुरक्षा अपने अन्तर्गत व्यक्तिगत सद्इच्छा तथा भविष्य,व्यक्तिगत सामर्थ्य एवं अवसर की सुनिश्चितता को भी समाहित करती है। अपने निर्णय एवं भविष्य के प्रति सुनिश्चितता की भावना से युक्त व्यक्ति को स्वयं की देख–भाल के लिए सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त सामर्थ्यवान एवं क्षमतावान होना चाहिए।

हम व्यक्तिगत रूप से कितने सुरक्षित एवं स्वतन्त्र हैं? मानव सुरक्षा के विमर्श में यह मुख्य प्रश्न है। सुरक्षा किसके लिए ?महबूब उल हक के अनुसार मानव सुरक्षा के केन्द्र में राज्य एवं राष्ट्र नहीं बल्कि व्यक्ति एवं सामान्य जनता है। उन्होंने तर्क दिया कि विश्व मानव सुरक्षा के एक नये युग में प्रवेश कर रहा है जिसमें सुरक्षा की पूरी संकल्पना नाटकीय ढंग से परिवर्तित हो जाएगी। वे लिखते हैं कि हमें मानव सुरक्षा की एक ऐसी नवीन संकल्पना की रचना की आवश्यकता है जो हमारी जनता के जीवन में प्रतिबिम्बित होती हो न कि हमारे देश के हथियारों में।

हक ने प्रारम्भ में ड्रग्स, रोगों, आतंकवाद एवं गरीबी को इन मूल्यों के लिए खतरा बताया। बाद में उन्होंने पाया कि कुछ अन्य मूल खतरे भी हैं जैसे– असमान विश्व व्यवस्था जिसमें कुछ राज्य एवं श्रेष्ठ लोग , एक विशाल मानव समूह पर हानिप्रद

स्थिति तक प्रभावी हैं। यह विश्व व्यवस्था विकास की प्रचलित धारणा एवं अभ्यास, सुरक्षा के लिए शस्त्रों पर भरोसा, उत्तर एवं दक्षिण के वैश्विक विभाजन एवं वैश्विक संस्थाओं (जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ) के लगातार हाशिए पर जाने से निर्मित हुई है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की रिपोर्ट के अनुसार मानव सुरक्षा के खतरों को निम्न सात भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- आर्थिक सुरक्षा को खतरा
- खाद्य सुरक्षा को खतरा
- स्वास्थ्य सुरक्षा को खतरा
- वातावरणीय सुरक्षा को खतरा
- वैयक्तिक सुरक्षा– हिंसक अपराध, ड्रग तस्करी, हिंसा एवं बच्चों एवं महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार।
- सामुदायिक सुरक्षा के खतरे– परिवारों का खत्म होना, परम्परागत भाषाओं एवं नृजातीय संस्कृति का विघटन।
- राजनैतिक सुरक्षा के खतरे– राज्य दबाव या उत्पीडन, नियोजित मानवाधिकार उल्लंघन, सैन्यीकरण।

वास्तव में ऐसी कोई स्थिति नहीं सम्भव प्रतीत होती है जिसे पूर्ण एवं स्थायी सुरक्षा कहा जा सके। इसकी चरम स्थिति पूर्णता के आस–पास हो सकती है तथा एक विशेष समयावधि के लिए यह स्थायी प्रतीत हो सकती है। प्रायः यह समग्र राष्टीय शक्ति की पर्यायवाची प्रतीत होती है।वास्तव में सुरक्षा एक स्थिति ही नहीं बल्कि एक प्रक्रिया भी है जो निरन्तर चलती रहती है। चूँकि किसी राज्य के खतरे स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकृति के होते हैं तथा नित नये खतरे भी उपस्थित होते रहते हैं अतः सुरक्षा के लिए खतरे सदैव उपस्थित रहेंगे और पूर्ण सुरक्षा कभी भी नहीं प्राप्त की जा सकेगी। (अर्नोल्ड वोल्फर, नेशनल सिक्योरिटी एस एन एंबिगुओस सिंबल, पॉलिटिकल साइंस क्वार्टरली, दिसंबर 1952, संख्या 4 पृष्ठ 482)

शक्ति एवं शान्ति के द्वारा राज्य की सुरक्षा के आन्तरिक एवं वाह्य खतरों को मात्र कम किया जा सकता है किन्तु समाप्त नहीं किया जा सकता है।

सुरक्षा चिंतन पर वाल्ट ने चेतावनी दी कि अगर सुरक्षा के अध्ययन का और अधिक विस्तार किया गया तो पर्यावरण,वंश, जाति, बाल अपराध या आर्थिक मंदी आदि भी सुरक्षा के खतरे में शामिल हो जाएँगे तो इससे इसका बौद्धिक सामंजस्य नष्ट हो जाएगा ओर इस प्रकार की समस्याओं का समाधान और भी कठिन हो जाएगा। लेकिन उनका यह सुझाव था कि सुरक्षा अध्ययन को इस तरह परिभषित किया जा सकता है– ''खतरे का अध्ययन और सैन्यबल का प्रयोग व नियंत्रण''। सुरक्षा चिंतन जितना संकुचित होगा उतना ही लाभदायक होगा।

प्रारम्भ में सुरक्षा चिंतन पर यथार्थवादी विचारकों का अधिक प्रभाव था जिनके अनुसार शक्ति ही सुरक्षा का अन्तिम सर्वमान्य समाधान हो सकती है। दूसरी ओर आदर्शवादी विचारकों ने शांति एवं मानवाधिकारों पर कुछ अधिक ही जोर दिया जो कुछ हद तक अव्यवहारिक है। यद्यपि नव यथार्थवादी दृष्टिकोण 'शक्ति की विलासित' से निकलने में मदद करता है और आदर्शवादी दृष्टिकोण की तरह अव्यावहारिक भी नहीं है।सुरक्षा चिंतन का तार्किक दृष्टिकोण इससे भी आगे जाकर कहता है कि सुरक्षा शक्ति का कारक नहीं बल्कि सहयोगी है तथा यह सदैव शांति का परिणाम नहीं भी होती है। अन्ततः यह सत्य है कि सुरक्षा की कोई एक निश्चित व सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती है। इसीलिए अर्नाल्ड बुल्फर ने इसे 'एक अस्पष्ट प्रतीक' तथा बैरी बुजान ने 'अविकसित संकल्पना' कहा। अर्नाल्ड बुल्फर का यह कथन भी सही है कि राष्ट्रीय सुरक्षा का तात्पर्य भिन्न–भिन्न राष्ट्रों के लिए भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न होता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा

राष्ट्रीय सुरक्षा की आधुनिक अवधारणा का उदय 17वीं सदी में यूरोप में तीस वर्षीय युद्ध और इंग्लैंड में गृह युद्ध के दौरान हुआ। 1648 में,वेस्टफेलिया संधि ने इस विचार को स्थापित किया कि राष्ट्र–राज्य का न केवल घरेलू मामलों जैसे धर्म पर संप्रभु नियंत्रण होता, बल्कि बाहरी सुरक्षा पर भी नियंत्रण होता है।हालांकि आज राष्ट्र–राज्य का विचार सामान्य है फिर भी यह मान लेना गलत होगा कि अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा को देखने का यह एकमात्र तरीका है।

हेराल्ड ब्राउन, (1983) ने अपनी रचना थिकिंग अबाउट नेशनल सिक्यूरिटीः डिफेंस एवं फारेन पालिसी इन ए डेन्जरस वर्ल्ड 'में बताया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा किसी राष्ट्र की समूचे विश्व के साथ तार्किक आधार पर अपने आर्थिक संबन्धों को बनाये रखने,अपनी प्रकृति,संस्थानों एवं प्रशासन को बाह्य खतरों से संरक्षित रखने एवं अपनी सीमाओं पर नियन्त्रण रखने की क्षमता है।

के.सुब्रम्हणयम के अनुसार– राष्ट्रीय सुरक्षा मात्र क्षेत्रीय अखण्डता को बचाये रखना ही नही है बल्कि इसका अर्थ है कि राष्ट्र औद्योगीकरण के मार्ग पर तेजी से चल रहा हो और उसके पास न्याय पर आधारित एक संतुष्ट समाज एवं सामान्य दृ ष्टिकोण हो। कोई भी वस्तु अथवा कारक जो विकास के इस मार्ग में आंतरिक या वाह्य रुप से खतरा उत्पन्न करता है वह राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा माना जाएगा।

परंपरागत और गैर परंपरागत सुरक्षाः

परंपरागत सुरक्षा की धारणा का संबंध बाहरी खतरों से होता हैं। पारंपरिक धारणा का संबंध सैन्य खतरे से उत्पन्न चिंता से हैं। अपरंपरागत सुरक्षा में मानवीय अस्तित्व पर हमला करने वाले सभी खतरों को शामिल किया जाता है। अपारंपरिक सुरक्षा का संबंध सैन्य खतरे के अलावा अन्य व्यापक खतरों से हैं, जैसे स्वास्थ्य सुरक्षा,खाद्य सुरक्षा,जल सुरक्षा आदि।

गैर परंपरागत सुरक्षा और संयुक्त राष्ट्र संघ

गैर पारंपरिक सुरक्षा प्रतिमान के तहत जलवायु परिवर्तन, पानी और पर्यावरण या यहां तक कि खाद्य सुरक्षा जैसी चुनौतियों पर विचार नहीं किया गया। 1994 में, संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट ने लोगों की सुरक्षा की अवधारणा पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता को सबसे आगे लाया और आर्थिक, स्वास्थ्य और पर्यावरण सुरक्षा सहित कई आवश्यक चीजों की पहचान की। पानी, जो इन अनिवार्यताओं के मूल में निहित है, इसको पर्याप्त प्रमुखता नहीं मिली जबकि, जल युद्ध'' अकादमिक जांच के अधीन थे, वैश्विक चुनौती के रूप में जल सुरक्षा की अवधारणा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। वर्तमान में, पानी, ऊर्जा, भोजन व विकास, और राजनीतिक स्थिरता के साथ संबंध को हर सुरक्षा बहस के मूल में

रखा गया है। 2015 में, दावोस में वैश्विक आर्थिक मंच के नेताओं ने पानी को समाज में जोखिम के रूप में प्रथम स्थान दिया।

सतत विकास लक्ष्य 6 ''सभी के लिए स्वच्छ पानी और स्वच्छता'' के बारे में हैं। यह 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्थापित 17 विकास लक्ष्यों में से एक है, इसके अधिकारिक शब्द हैः ''सभी के लिए पानी व स्वच्छता की उपलब्धता व स्थायी प्रबंधन सनिश्चित करना।''

चित्र–1:राष्ट्रीय सुरक्षा घटना

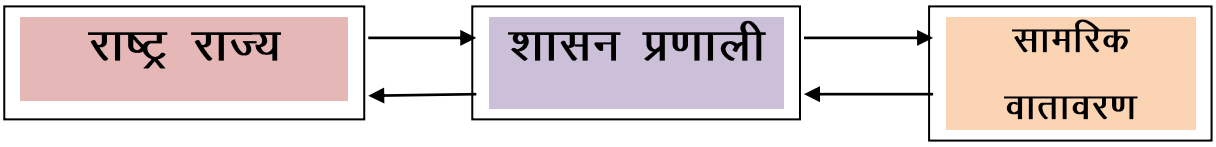

'सुरक्षा–खतरे' की अवधारणा अनादि काल से अपने व्यक्तिगत और अपने कॉर्पोरेट अस्तित्व में मानव की सबसे मौलिक चिंता रही है, क्योंकि यह संघर्ष की जड़ में निहित है। एक लोकप्रिय भाषा में, सुरक्षा को शारीरिक स्थिति के रूप में समझा जाता है, जहां सभी जीवित प्राणियों को इस बात पर ध्यान केंद्रित करने का पूरा अवसर मिलता है कि बिना किसी प्रतिरोध के सबसे उपयोगी तरीके से अपनी क्षमता को कैसे विकसित किया जाए।

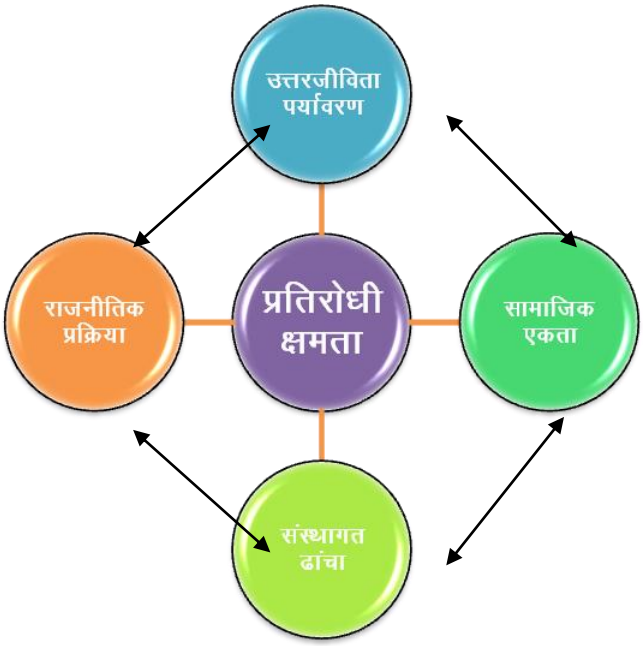

चित्र–2: राष्ट्रीय सुरक्षा का मूल प्रतिमान

स्त्रोत :जसजीत सिंह, भारतीय सुरक्षा परः राष्ट्रीय रणनीति के लिए एक रूपरेखा, सामरिक विश्लेषण, वॉल्यूम 11, नं. 8, नवम्बर 1987, पृ. 888

इस अर्थ में, यह न केवल हिंसा की अनुपस्थिति से, बल्कि आत्म–संतोषजनक वातावरण के प्रसार से भी निर्धारित होता है, जहां व्यक्ति और उसकी सामाजिक जरूरतों को बिना किसी खतरे के पूरा किया जाता है।

यह राष्ट्रीय सुरक्षा परिघटना अपने प्रतिमान (चित्र 2) द्वारा परिचालन रूप से कायम है, जो परिभाषा के अनुसार किसी विशेष समय पर एक राष्ट्र–राज्य के विचारों, हितों और शक्ति प्रोफ़ाइल के परस्पर क्रिया का उत्पाद है।

राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रतिमान एक राष्ट्र–राज्य के सामने आने वाले सुरक्षा खतरों की उत्पत्ति की पेशकश करता है। पाठ्यक्रम के इसके तत्व राष्ट्र–राज्य निर्माण की प्रक्रिया के स्तर के आधार पर अलग–अलग डिग्री की आलोचना प्राप्त करते हैं।प्रतिमान के प्रमुख तत्वों की सकारात्मक वृद्धि खतरों की गंभीरता को कम करके इस व्यापक तरीके से राष्ट्रीय सुरक्षा को बढ़ाने की ओर प्रवृत्त होगी।दूसरी ओर, नकारात्मक वृद्धि इसकी कमजोरियों को बढ़ाएगी। यह एक राष्ट्र–राज्य की खतरों और कमजोरियों को संतुलित करने की क्षमता है जो राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कथित खतरे की डिग्री निर्धारित करती है।प्रतिमान में, राज्य की जबरदस्ती क्षमता शासन को स्थिरता प्रदान करने में एक स्थिर भूमिका निभाती है। एक राष्ट्र–राज्य की वृद्धि, विकास और समृद्धि सुरक्षा प्रतिमान के लगभग 5 तत्वों के आसपास केंद्रित है, जैसे कि अस्तित्व का वातावरण, सामाजिक सामंजस्य, राजनीतिक प्रक्रिया, संस्थागत ढांचा और जबरदस्ती क्षमता।

उत्तरजीविता पर्यावरण

ये उस स्थिति को संदर्भित करता है जिसमें मास्लो की जरूरतों के पदानुक्रम के संदर्भ में अस्तित्व संबंधी जरूरतों को पूरा किया जाता है।ये जरूरतें तीव्रता में भिन्न होती हैं और सरल नहीं होती हैं, क्योंकि प्राथमिक और माध्यमिक जरूरतों के संदर्भ में पर्यावरण का व्यक्तियों की धारणा पर एक बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि मानवीय उद्देश्य जरूरतों पर आधारित होते हैं।मानव जीवन को बनाए रखने के लिए हवा, भोजन, पानी, वस्त्र, आश्रय, नींद आदि शारीरिक ंबुनियादी जरूरतें हैं, जिन्हें शासन द्वारा सुनिश्चित किया जाना है।सुरक्षा जरूरतें वे जरूरतें हैं जो शारीरिक खतरे और भय (नौकरी, संपत्ति, भोजन, कपड़े या आश्रय की हानि) से मुक्ति से संबंधित हैं।

संबद्धता या स्वीकृति की ज़रूरतें दूसरों से संबंधित होने, स्वीकार किए जाने की ज़रूरतों को संदर्भित करती हैं क्योंकि वे प्यार किए जाने से खुशी प्राप्त करते हैं और अस्वीकार किए जाने के दर्द से बचने की प्रवृत्ति रखते हैं ,एस्टीम नीड्स 'अहंकार' से संबंधित हैं और संतुष्टि उत्पन्न करते हैं जो शक्ति जैसे प्रतिष्ठा, स्थिति और आत्मविश्वास से संबंधित हैं। आत्म–साक्षात्कार की आवश्यकता सर्वोच्च आवश्यकता है जो मनुष्य की इच्छा है कि वह ऐसा बन जाए जो किसी की क्षमता को अधिकतम करने और कुछ हासिल करने में सक्षम हो। इस प्रकार, यदि कोई राष्ट्र–राज्य अपने नागरिकों की आवश्यकताओं पर पर्याप्त ध्यान देता है या इन आवश्यकताओं को महसूस करने के लिए एक सही वातावरण प्रदान करता है, तो वे सामाजिक एकता के परिणामस्वरूप खुश होने के लिए बाध्य हैं।

एक राज्य का मूल दायित्व किसी व्यक्ति की उत्तरजीविता आवश्यकताओं की देखभाल करना है जो सामाजिक सद्भाव या सामाजिक एकता को सुगम बनाएगा।यह सद्भाव पैदा करने में मदद करेगा; जबरदस्ती करने की क्षमता इन सभी तत्वों को उनके उचित संतुलन में रखती है।

सुचारू संचालन

राष्ट्रीय सुरक्षा प्रतिमान का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है जो राष्ट्र–राज्य यांत्रिकी के सुचारू संचालन की पेशकश करता है। जब भी कोई अन्य तत्व प्रतिमान के लिए असमानता की पेशकश करता है। इस क्षमता का तात्पर्य एक राष्ट्र–राज्य की क्षमता से है जिसका उपयोग किसी भी आंतरिक या बाहरी कमजोरियों का मुकाबला करने के लिए किया जा सकता है। यह राज्य की संप्रभुता का प्रतीक है और सम्मान और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। जबरदस्ती करने की क्षमता एक अलग संस्था में आयोजित की जाती है जो अपने स्वयं के मानदंडों, मूल्यों और संस्कृति को विकसित करती है। दरअसल, इन संस्थाओं की अपनी एक दुनिया होती है जिसमें सभी गतिविधियां अनूठी होती हैं। ये संस्थाएं 'राजनीतिक' हैं, लेकिन मुख्य रूप से एक राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा शासित होती हैं। सभी राजनीतिक प्रणालियों में, कुछ को छोड़कर, इन संस्थानों को राज्य के सर्वोच्च राजनीतिक अधिकार के अधीन रखा गया है।

सुरक्षा प्रतिमान के ये तत्व सुरक्षा समस्याओं के स्रोत के रूप में भी कार्य करते हैं, जब भी इन घटकों के आदर्श पूर्ण नहीं होते हैं। इन आदर्शों की अपूर्णता सुरक्षा प्रतिमान के संचालन में हितों के टकराव के कारण है। ये हित राष्ट्र–राज्यों के प्रतिपादित सिद्धांतों से उत्पन्न होते हैं जो उनके समर्थित मूल्यों पर आधारित होते हैं। ये मूल्य एक राष्ट्र–राज्य के दार्शनिक अभिविन्यास से आकार लेते हैं जो राष्ट्रीय संस्कृति में अपना प्रतिबिंब पाता है, जो सभ्यता नामक एक बड़ी प्रक्रिया का एक हिस्सा है। ये हित कुछ उद्देश्यों को जन्म देते हैं जो कुछ नीतियों के माध्यम से प्राप्त किए जाते हैं।

राष्ट्र–राज्यों की सुरक्षा समस्याएं आम तौर पर समकालीन रणनीतिक वातावरण से जुड़ी होती हैं क्योंकि यह सुरक्षा के मुद्दों की प्रकृति और चरित्र को इसके मापदंडों में हर बदलाव के साथ बदलने में मदद करती है। विश्व व्यवस्था जो शीत युद्ध की समाप्ति के बाद उभरी हुई प्रतीत होती है, सभी राष्ट्र राज्यों के लिए रहस्यमय है – विकसित, विकासशील और अविकसित क्योंकि यह आकार लेने वाले परिवर्तनों के सिद्धांत, सामान्यीकरण या अवधारणा के सभी प्रयासों को धता बताती है।

कई विकासशील देशों में किसी समस्या की पहचान करने और उस पर कार्रवाई करने की प्रवृत्ति होती है जब वह गंभीर हो जाती है या तो बेकाबू या असहनीय हो जाती है। इन राष्ट्रों में शासन किसी राष्ट्र के भीतर या किसी राष्ट्र के बाहर उत्पन्न होने वाली समस्या की विकासवादी प्रक्रिया की स्पष्ट रूप से पहचान, जांच और विश्लेषण करने में सक्षम नहीं है। आम धारणा यह प्रतीत होती है कि एक परिपक्व लोकतंत्र और दूसरी आबादी वाला देश होने के नाते, भारत ने अभी तक अपनी सुरक्षा समस्याओं के विश्लेषण के अपने ढांचे को औपचारिक रूप नहीं दिया है। यद्यपि उनकी अधिकांश समस्याओं, सैन्य या गैर–सैन्य, को काफी हद तक सफलतापूर्वक हल किया गया है। राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा का निर्माण और प्रक्षेपण न केवल विश्लेषण के व्यापक ढांचे पर आधारित है, बल्कि राष्ट्रीय धारणा, विशिष्ट मूल्यों और दृष्टिकोण की सीमा और गुणवत्ता पर भी आधारित है।

इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को तीन घटनाओं को शामिल करने के लिए विस्तृत किया गया है। पहला, पारंपरिक है,

जहां बाहरी खतरों के खिलाफ सुरक्षा सभी राष्ट्र–राज्यों का प्राथमिक लक्ष्य माना जाता है। उनके विकास का स्तर चाहे जो भी हो, उनकी भौगोलिक स्थिति की प्रकृति, उनकी सामाजिक व्यवस्था का चुनाव, और उनके सरकारी ढांचे की व्यवहार्यता, इन सभी ने, अप्रत्यक्ष या स्पष्ट रूप से, अपने विकास के दौरान हमेशा केवल इस आयाम को ध्यान में रखा है। यहां तक कि वे राष्ट्र जिनके पास कोई पहचानने योग्य विरोधी नहीं है और इसलिए किसी बाहरी आक्रमण से डरने का कोई विश्वसनीय कारण नहीं है, आम तौर पर इस लक्ष्य को सबसे आगे रखते हैं, इस धारणा पर कि किसी भी समय किसी भी स्पष्ट खतरे की अनुपस्थिति, इसका मतलब यह नहीं है कि यह भविष्य में कभी नहीं उभरेगा। दूसरा पहलू, जो अपेक्षाकृत हाल ही में है, आंतरिक आयाम है जिसमें घरेलू कारकों, स्थितियों और ताकतों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है जो एक राष्ट्र–राज्य के 'मूल मूल्यों' को चुनौती दे सकते हैं। कई देशों में यह पारंपरिक बाहरी खतरे से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है। जबकि स्थापित शासन के लिए ऐसा खतरा अनिवार्य रूप से आंतरिक हो सकता है, दूसरी ओर, यह बाहरी विरोधियों से भी जुड़ा हो सकता है। तीसरा है 'रणनीतिक वातावरण' जिसमें राष्ट्र–राज्य रहते हैं। उन देशों के लिए जो आकार में आयामी हैं (जैसे भारत) और उनकी परिधि पर राजनीतिक अस्थिरता है या पड़ोस में अन्य प्रतिकूल शक्तियों की उपस्थिति को स्थितिजन्य सुरक्षा खतरे के रूप में माना जाता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा के पारंपरिक दृष्टिकोण ने पूरी तरह से राज्य की संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता को बाहरी आक्रमण से बचाने की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित किया है, जो विभिन्न ज्ञात और अज्ञात कमजोरियों से उत्पन्न होने वाले गैर–सैन्य खतरों को कम करता है। सूचना युद्ध, छोटे हथियारों के प्रसार से जुड़े आतंकवाद के संकट, भोजन, पानी, ऊर्जा की अनिवार्यता, सामूहिक प्रवास के खतरे और अन्य सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक–सैन्य और सांस्कृतिक खतरे।

इस प्रकार, यदि राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरों को कम करना है, तो राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपरिहार्य है। यह समग्र परिभाषा केवल तभी प्राप्त की जा सकती है जब एक कुलीन, (निर्णय लेने वाले) और आम लोगों की सुरक्षा

सोच और सुरक्षा व्यवहार को इस संदर्भ में समझा जाए कि वे सुरक्षा की अवधारणा कैसे करते हैं या सुरक्षा चिंताओं के स्रोत कैसे स्थित हैं या सुरक्षा समस्याएं कैसे हैं घरेलू, क्षेत्रीय और वैश्विक स्तरों पर कैसे पहचान की जाती है और अनुमान कैसे लगाए जाते हैं।

हालांकि सुरक्षा की अवधारणा अपने आप में व्यापक है, लेकिन 'विशेषज्ञता' के उद्भव ने इसके विभिन्न आयामों को जन्म दिया है। मानव सुरक्षा उनमें से एक है जिसका सीधा संबंध मानव (जनसंख्या) से है। दूसरे शब्दों में यदि जनसंख्या कम है तो राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्याएँ भी छोटी हैं लेकिन जैसे–जैसे जनसंख्या की मात्रा बढ़ती है, ये समस्याएँ भी बढ़ती रहती हैं।

राष्ट्र–राज्य प्रणाली की गतिशीलता में, जनसंख्या राष्ट्रीय शक्ति का एक प्रमुख घटक है जो बदले में इसकी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए जिम्मेदार है। यदि जनसंख्या का आकार और संरचना दोषपूर्ण है, तो राष्ट्र–राज्य की गतिशीलता अस्थिर होगी और सामरिक दृष्टि से, इसकी राष्ट्रीय सुरक्षा को कई खतरों का सामना करना पड़ेगा जनसंख्या, खतरे और राष्ट्रीय सुरक्षा इसलिए तीन चर हैं जो एक दूसरे के साथ लगातार बातचीत करते हैं।

मानव सुरक्षा की धारणा सुरक्षा की तलाश में एक प्रमुख वैचारिक प्रगति है। यह जीवन के सभी व्यापक और एकीकृत मिश्रण का एक प्रतिमान है जो मानव अस्तित्व को अर्थ और समर्थन देता है। यह एक रक्षात्मक अवधारणा नहीं है, बल्कि सुरक्षा को देखने के लिए एक वैकल्पिक प्रिज्म है, और मानवीय जरूरतों के मूल तत्वों की पहचान करने का प्रयास करता है, जिस पर अंतर–सामाजिक सुरक्षा आधारित है और जिस पर व्यक्तिगत और सामूहिक आकांक्षाओं को व्यक्त और महसूस किया जाता है।

यह आयाम लोगों की सुरक्षा और उनके सतत विकास पर केंद्रित है। मानव सुरक्षा के लिए खतरों की सूची को सात व्यापक श्रेणियों अर्थात् आर्थिक सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, जल सुरक्षा स्वास्थ्य सुरक्षा, पर्यावरण सुरक्षा, व्यक्तिगत सुरक्षा, सामुदायिक सुरक्षा और राजनीतिक सुरक्षा के तहत माना जा सकता है। इस प्रकार जब मानव सुरक्षा कहीं भी खतरे में होती है, तो यह लोगों को, हर जगह प्रभावित कर सकती

है। अकाल, जातीय संघर्ष, पानी की कमी, सामाजिक विघटन, आतंकवाद, प्रदूषण और मादक पदार्थों की तस्करी को अब राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर सीमित नहीं किया जा सकता है और कोई भी राष्ट्र अलग–थलग नहीं रह सकता है। हालांकि, मानव सुरक्षा का प्रमुख जोर रोग, भूख, बेरोजगारी, अपराध, सामाजिक संघर्ष, राजनीतिक दमन और पर्यावरणीय खतरों की ओर है।

मानव सुरक्षा के घटक दो चीजों के आसपास केंद्रित हैं, भय से मुक्ति और अभाव से मुक्ति। विकसित देशों के लिए अवधारणा अपराध के खतरे, नशीली दवाओं की तस्करी, घातक बीमारियों (जैसे एचआईवी, एड्स), मिट्टी की गिरावट, प्रदूषण के बढ़ते स्तर, नौकरी खोने का डर और कई अन्य, चिंताएं जो इससे उभरती हैं, से सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करती हैं। विकासशील देशों में यह भूख के खतरे, गंभीर बीमारी, गरीबी और औद्योगिक दुनिया की अन्य सभी समस्याओं से संबंधित है। इस आयाम (मानव सुरक्षा) के पैरोकारों का मानना है कि सुरक्षा की अवधारणा को बुनियादी तरीकों में तत्काल बदलना चाहिए, क्षेत्रीय सुरक्षा पर विशेष जोर से लोगों की सुरक्षा पर अधिक जोर देना चाहिए और सुरक्षा से लेकर शस्त्रीकरण तक सतत मानव विकास के माध्यम से सुरक्षा की ओर बढ़ना चाहिए।

राष्ट्रीय सुरक्षा के पारंपरिक ढांचे के भीतर जिन खतरों और चुनौतियों का समाधान नहीं किया जा सकता है, उनके बारे में जागरूकता ने विद्वानों को सुरक्षा की समझ को फिर से परिभाषित करने के लिए मजबूर किया है। सुरक्षा का उद्देश्य क्या है? खतरों की प्रकृति क्या है और किस माध्यम से खतरे उत्पन्न होते है, शीत–युद्ध की समाप्ति के बाद इन प्रश्नों और चर्चाओं ने गति पकड़ी और उन अंतर्दृष्टियों को जन्म दिया जो प्रासंगिक हैंः –

- वैश्वीकरण की दुनिया में वास्तविक सुरक्षा विशुद्ध रूप से राष्ट्रीय आधार पर प्रदान नहीं की जा सकती है। सीमा पार चुनौतियों की भीड़ से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए एक बहुपक्षीय और यहां तक कि वैश्विक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।
- राज्य सुरक्षा पर पारंपरिक ध्यान अपर्याप्त है और वहां रहने वालों के लिए सुरक्षा और कल्याण को शामिल करने की आवश्यकता है। यदि व्यक्ति और

समुदाय असुरक्षित हैं, तो राज्य की सुरक्षा स्वयं अत्यंत नाजुक हो सकती है।

- गैर–सैन्य आयामों का सुरक्षा और स्थिरता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अनेक दबावों का सामना करना पड़ता है। वे संसाधनों के लिए बढ़ती प्रतिस्पर्धा के एक दुर्बल संयोजन का सामना करते हैं, उदाहरणस्वरूप गंभीर पर्यावरणीय विघटन(पानी सहित), संक्रामक रोगों का पुनरुत्थान, गरीबी और धन की असमानता, जनसांख्यिकीय दबाव, बेरोजगारी और आजीविका की असुरक्षा।

दबाव का सामना करने वाले समाज अनिवार्य रूप से हिंसा नहीं करते हैं, लेकिन वे राजनीतिक गतिशीलता में तब्दील हो सकते हैं जो बढ़ते ध्रुवीकरण और कट्टरता की ओर ले जाते हैं। सबसे खराब स्थिति वह हो सकती है जहां शिकायतों को छोड़ दिया जाता है, जहां लोग बड़े पैमाने पर बेरोजगारी या पुरानी गरीबी से जूझ रहे हैं, जहां संस्थान कमजोर या भ्रष्ट हैं, जहां हथियार आसानी से उपलब्ध हैं, और जहां एक के लिए आशा की कमी पर राजनीतिक अपमान या निराशा होती है। (संयुक्त राष्ट्र जल वार्षिक रिपोर्ट 2015, थीमः ''स्वच्छ जल और स्वच्छता '', 2015)

असुरक्षा हिंसक संघर्ष के अलावा अन्य तरीकों से भी प्रकट हो सकती है। क्या समाज की भलाई और अखंडता से इतना समझौता किया जाता है कि वे लंबे समय तक अस्थिरता और सामूहिक पीड़ा का कारण बनते हैं। पीड़ितों की संख्या और बड़े पैमाने पर विस्थापन के कारण, तीव्र गरीबी और अन्य सामाजिक विफलताओं के नतीजे सशस्त्र संघर्ष के प्रकोप से कहीं अधिक बड़े होते हैं।

पानी, कृषि योग्य भूमि, वन और मत्स्य पालन जैसे नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच को लेकर भी विवाद उत्पन्न होते हैं। यह विशेष रूप से किसानों, खानाबदोश चरवाहों, पशुपालकों और संसाधन निकालने वालों समूहों के बीच मामला है, जो सीधे संसाधन आधार के स्वास्थ्य और उत्पादकता पर निर्भर हैं, लेकिन असंगत जरूरतें हैं। इस तरह के तनाव प्राकृतिक संसाधनों की बढ़ती कमी और जनसंख्या दबाव और प्रति व्यक्ति खपत बढ़ने के कारण बढ़ती मांग के साथ तेज होते हैं। ब्राजील, कोटे डी आइवर, हैती, मैक्सिको, नाइजीरिया, पाकिस्तान, फिलीपींस और रवांडा जैसे देशों में स्थानीय हिंसा इन कारकों से प्रेरित है।

पानी सबसे कीमती संसाधन है। भोजन और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं के लिए पानी की मात्रा और गुणवत्ता दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए, लगभग 3 बिलियन लोग – अनुमानित विश्व जनसंख्या का 40 प्रतिशत 2020 तक जल–तनाव वाले देशों में रहेंगे। हालांकि कोई अंतरराज्यीय जल युद्ध नहीं हो सकता है, जैसा कि कुछ ने भविष्यवाणी की है, लेकिन स्थानीय विवाद और संघर्ष बढ़ने की संभावना है।

जलवायु परिवर्तन निश्चित रूप से पर्यावरणीय चुनौतियों की एक विस्तृत श्रृंखला को तेज करेगा, इस प्रकार इनमें से कई संघर्षों को तेज करेगा। अधिक लगातार और तीव्र सूखा, बाढ़ और तूफान फसल के साथ खिलवाड़ करेंगे, कुछ क्षेत्रों की रहने की क्षमता को कमजोर करेंगे, अनैच्छिक जनसंख्या आंदोलनों को बढ़ाएंगे, और राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों गंभीर रूप से परीक्षण करेंगे।

भारत की सुरक्षा समस्याएं

भारत की सुरक्षा समस्याओं को सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक–आर्थिक और सामरिक वास्तविकताओं की पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है।

भारत में, राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा की जड़ों को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष में खोजा जा सकता है, जिसे बाद भारत में इसके संविधान के माध्यम से व्यक्त और कार्यान्वित किया गया था। राष्ट्रीय सुरक्षा का पहला और सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य कुछ मूल मूल्यों की पहचान करना है जिन्हें संरक्षित किया जाना चाहिए जैसे कि जनसंख्या का भौतिक अस्तित्व, क्षेत्रीय अखंडता और राजनीतिक स्वतंत्रता। हालांकि, केवल शारीरिक अस्तित्व ही काफी नहीं है। भारत को अपने मूल चरित्र को बनाए रखने के लिए अन्य मूल्यों को बनाए रखना होगा। इन मूल्यों में संघीय राजनीति के साथ एक धर्मनिरपेक्ष, बहुल लोकतांत्रिक समाज के न्याय, स्वतंत्रता और रखरखाव की अवधारणाएं शामिल हैं। ये, आर्थिक कल्याण, सतत विकास और राज्य की विचारधारा के प्रचार और संरक्षण जैसे मूल्यों के अलावा भारतीय राज्य के आवश्यक चरित्र और नींव का निर्माण करते हैं। नतीजतन, राज्य के मूल्यों को अक्सर आंतरिक और बाहरी खतरों के अधीन किया जाता है। इसलिए, आंतरिक और बाहरी सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा के अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य बन जाते हैं। इस प्रकार, जैसा कि

भारतीय संविधान में निहित है, भारतीय राज्य के आदर्श में धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य और अपने सभी नागरिकों को सुरक्षित रखना शामिल है; न्याय–सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, स्वतंत्रता – विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, विश्वास और पूजा की, स्थिति और अवसर की समानता; और व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करते हुए सभी बंधुता को बढ़ावा देना। ये मूल्य व्यापक सामाजिक सहमति का आनंद लेते हैं। हालाँकि ये सभी मूल्य अभी भी विकास की प्रक्रिया में हैं। भारतीय बहु–जातीय समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति अभी भी इन मूल्यों को महसूस करने के लिए कुछ सीमाओं और कमियों से ग्रस्त हैं। इस प्रकार, भारत की सुरक्षा के लिए बहुआयामी और बहु–दिशात्मक खतरे हैं। (सुब्रह्मण्यम, पोस्ट–क्राइसिस मैनेजमेंट ऑफ सिक्योरिटी, स्ट्रेटेजिक एनालिसिस, वॉल्यूम 13, नंबर 7, अक्टूबर 1990, पृष्ठ 845–852)

किसी भी अन्य विकासशील देश की तरह भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा समस्याएँ राष्ट्र–राज्य निर्माण की प्रक्रिया में उत्पन्न हुईं, जो आर्थिक विषमताओं और सामाजिक असमानताओं के संदर्भ में आंतरिक गतिशीलता और बाहरी ताकतों के परस्पर क्रिया द्वारा अनुकूलित थी, जो एक समाज में अशांति पैदा करती हैं। इसके अलावा, भारत की समस्याएं इसके आकार और जातीय, धार्मिक, भाषाई, सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक–आर्थिक पहचान के संदर्भ में इसकी जनसंख्या के विकास में निहित थीं।

ये, आंतरिक कारक कभी–कभी बाहरी खतरे की तुलना में राष्ट्रीय सुरक्षा को अधिक गंभीर रूप से खतरे में डाल सकते हैं और इस संदर्भ में राष्ट्रीय सुरक्षा के घरेलू आयामों पर अधिक ध्यान देने योग्य है। एक गंभीर राजनीतिक विघटन या सैन्य शक्ति की परवाह किए बिना निरंतर आर्थिक अस्थिरता के कारण एक अस्थिर आंतरिक स्थिति एक राष्ट्र की सुरक्षा में एक महत्वपूर्ण कारक बन जाती है। भारत जैसा विकासशील राष्ट्र, परिभाषा के अनुसार, संक्रमण में एक समाज है संक्रमण में किसी भी वस्तु की तरह, अशांति की लहरें पैदा करने की उम्मीद की जानी चाहिए।

गैर–पारंपरिक सुरक्षा मुद्दों के संदर्भ में जिन्हें "पारंपरिक सुरक्षा खतरों के विपरीत कहा जाता है और सैन्य, राजनीतिक और राजनयिक संघर्षों के अलावा अन्य

कारकों को संदर्भित करता है, लेकिन एक संप्रभु राज्य के अस्तित्व और विकास के लिए खतरा पैदा कर सकता है। इन गैर–पारंपरिक सुरक्षा खतरों को मोटे तौर पर वर्गीकृत किया जा सकता हैः अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, अंतरराष्ट्रीय संगठित अपराध, पर्यावरण सुरक्षा, अवैध प्रवास, ऊर्जा सुरक्षा और मानव सुरक्षा।

भारत का जल परिदृश्य और राष्ट्रीय सुरक्षा:

इस भाग में जल की कमी के जल संकट में परिवर्तित होने की परिघटना के आलोक में भारत के जल संसाधनों को समझने और परखने का प्रयास किया गया है और यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि जल संकट भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु गंभीर चुनौती के रूप में उभर रहा है।

जल संकट मानव सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरे के रूप में उभर रहा है क्योंकि समकालीन दौर में निम्न समस्याएं विद्यमान हैंः

- भूजल की कमी।
- पर्यावरण में गिरावट।
- जल स्रोतों में प्रदूषण।

ऐसा लगता है कि लोग और समुदाय इस कमी का अनुभव कर रहे हैं और इसलिए समय की आवश्यकता है कि इस समस्या की जटिलता को प्रभावी ढंग से संबोधित किया जाए, इससे पहले कि यह सुरक्षा–खतरे में परिवर्तित हो जाए।

पानी मानव, पौधों और जानवरों के जीवन, स्वास्थ्य और भलाई के लिए महत्वपूर्ण है। पानी की उपलब्धता, मात्रा और विश्वसनीयता के संदर्भ में (ए) मानव उपभोग के लिए पर्याप्त और सुरक्षित पानी की उपलब्धता को निर्धारित करती है; (बी) आवश्यक खाद्य पदार्थ और फाइबर का उत्पादन करने वाली कृषि की प्रकृति, विस्तार और उत्पादकता; (सी) जंगलों, घास के मैदानों और वृक्ष फसलों की वृद्धि; (डी) ऊर्जा का उत्पादन, और गैर–कृषि उत्पादों और सेवाओं का प्रावधान; और (ई) पारिस्थितिक संतुलन और जैव विविधता का रखरखाव। (तालिकाः जल के बिना जीवन संभव नहीं)।

तालिका –1: एक नज़र में: जल के बिना जीवन संभव नहीं है

1.	बढ़ती हुई जनसंख्या को प्यास से मुक्त रखें
2.	खाद्य उत्पादन बढ़ाएँ
3.	500 मीटर पशुधन और मत्स्य पालन का समर्थन करें
4.	औद्योगिक उत्पादन सुनिश्चित करें
5.	पर्यावरण के अनुकूल जल विद्युत उत्पन्न करें
6.	जैव विविधता और पर्यावरण का संरक्षण करें

(स्रोतः बैद्यनाथन,वाटर, 2011, पृष्ठ 44–45)

पृथ्वी पर सभी मीठे पानी का अंतिम स्रोत वर्षा और हिमपात है। आर्कटिक और अंटार्कटिक क्षेत्रों में जमे हुए बर्फ के क्षेत्र, अन्य जगहों के पर्वतीय ग्लेशियरों में स्थायी बर्फ और गहरे भूमिगत जलभृतों में जमा पानी। लेकिन, वार्षिक वर्षा की तुलना में इनमें संग्रहित जल की मात्रा बहुत कम होती है।

वर्षा नमी से बनने वाले बादलों से होती है जो महासागरों से वाष्पित हो जाती है, प्राकृतिक या मानव निर्मित जल निकायों से, जो जंगलों, फसलों और अन्य सभी वनस्पतियों से पानी जमा करते हैं। नमी इन्हीं से होती है। इनमें से, अब तक कुल वाष्पीकरण का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा महासागरों से है, जिसमें पृथ्वी के कुल जल भंडार का 97 प्रतिशत हिस्सा है। यह ज्यादातर गर्मी के मौसम में होता है। वाष्प–वाष्पोत्सर्जन तापमान का एक फलन हैः यह उष्ण कटिबंध में अधिक होता है (जहां तापमान समशीतोष्ण जलवायु की तुलना में अधिक होता है), और गर्मियों में बरसात के मौसम की तुलना में अधिक होता है। बारहमासी वनस्पति (जंगल और लंबी अवधि की फसलों से मिलकर) में मौसमी फसलों की तुलना में उच्च दर होती है। बंजर भूमि पर बहुत कम वाष्पीकरण होता है।

दुनिया की भूमि की सतह पर औसत वार्षिक वर्षा लगभग 836 मिमी है, जिसमें 97 मिमी बर्फ और 739 मिमी वर्षा शामिल है। इसका लगभग 3० प्रतिशत (435 मिमी)

वायुमंडल में वापस आ जाता है, (ए) बंजर भूमि से घटना वर्षा के वाष्पीकरण, खेती की भूमि पर उजागर पैच, और जल निकायों के कारण; और (बी) प्राकृतिक और खेती की वनस्पति से वाष्प वाष्पोत्सर्जन। शेष 40 प्रतिशत सतही नदी प्रणालियों में बहने वाले पानी के रूप में और भूजल जलभृतों को फिर से भरने के स्रोत के रूप में उभरता है।

वर्षा जल का एक चौथाई से थोड़ा अधिक उपसतह अपवाह के रूप में बह जाता है, और इसका एक–आठवां भाग सतही अपवाह के रूप में निकलता है। वर्षा जल का एक भाग जो भूमि तक पहुँचता है, ऊपरी मृदा से रिसकर जल के भूमिगत भण्डारों का निर्माण या पुनःपूर्ति करता है जिन्हें जलभृत कहते हैं। इसका परिमाण इस पर निर्भर करता है (ए) वर्षा की मात्रा और तीव्रता, इसका वितरण, और वर्षा ऋतु की अवधि; और (बी) पारगम्यता के संदर्भ में भूवैज्ञानिक विशेषताएं; सरंध्रता, और जलीय क्षेत्र की मात्रा, इस भंडारण का उपयोग वर्षा से पानी की आपूर्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है। प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ जिसने पानी को अधिक गहराई से टैप करना और उठाना संभव बना दिया है।

भू–रणनीतिक रूप से, भारत पूरी तरह से उत्तरी गोलार्ध में 8व4′ से 37व6′ उत्तरी अक्षांश और 68व7′ और 97 व 25′ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। दुनिया में 7 वां सबसे बड़ा और दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश। इसकी लंबाई करीब 3,214 किलोमीटर है। उत्तर से दक्षिण और लगभग 2,933 किमी. पूर्व से पश्चिम तक। यह हिमालय पर्वतमाला द्वारा एशिया की मुख्य भूमि से अलग किया गया है और दूसरी तरफ समुद्र से घिरा है। भूमि सीमा 15,200 किलोमीटर है। और समुद्र तट लगभग 6,083 किलोमीटर है। इस प्रकार, अपने आकार और स्थान के आधार पर, भारत एक उष्णकटिबंधीय देश की तुलना में बहुत अधिक समशीतोष्ण है। (खन्ना डी., सस्टेनेबल डेवलेपमेंट, 2001, पृ. 10)

किसी दिए गए क्षेत्र में उपयोग के लिए पानी के स्रोतों में स्थानीय वर्षा, भूमिगत जलभृतों में जमा पानी, नदियों में पानी और इसके क्षेत्रों से बहने वाली नदियाँ, और जलाशयों से लाया गया पानी या इसकी सीमाओं के बाहर पानी के प्रवाह को मोड़ना शामिल है। वास्तव में, पानी कितना उपलब्ध है, या उपलब्ध कराया जा

सकता है, यह भूगोल और भूविज्ञान, प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है। उपयोग योग्य आपूर्ति को प्रचुर मात्रा में माना जाता है या नहीं, आवश्यकताओं या मांग पर विचार किए बिना इसका अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है।

भारत की नदी प्रणाली पर संक्षिप्त नज़र पानी की कुल उपलब्धता का एक विचार देती है और अंतर्राज्यीय संबंधों में संघर्ष के के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सुरक्षा को मिलने वाली चुनौतियों की ओर भी इशारा करती है।

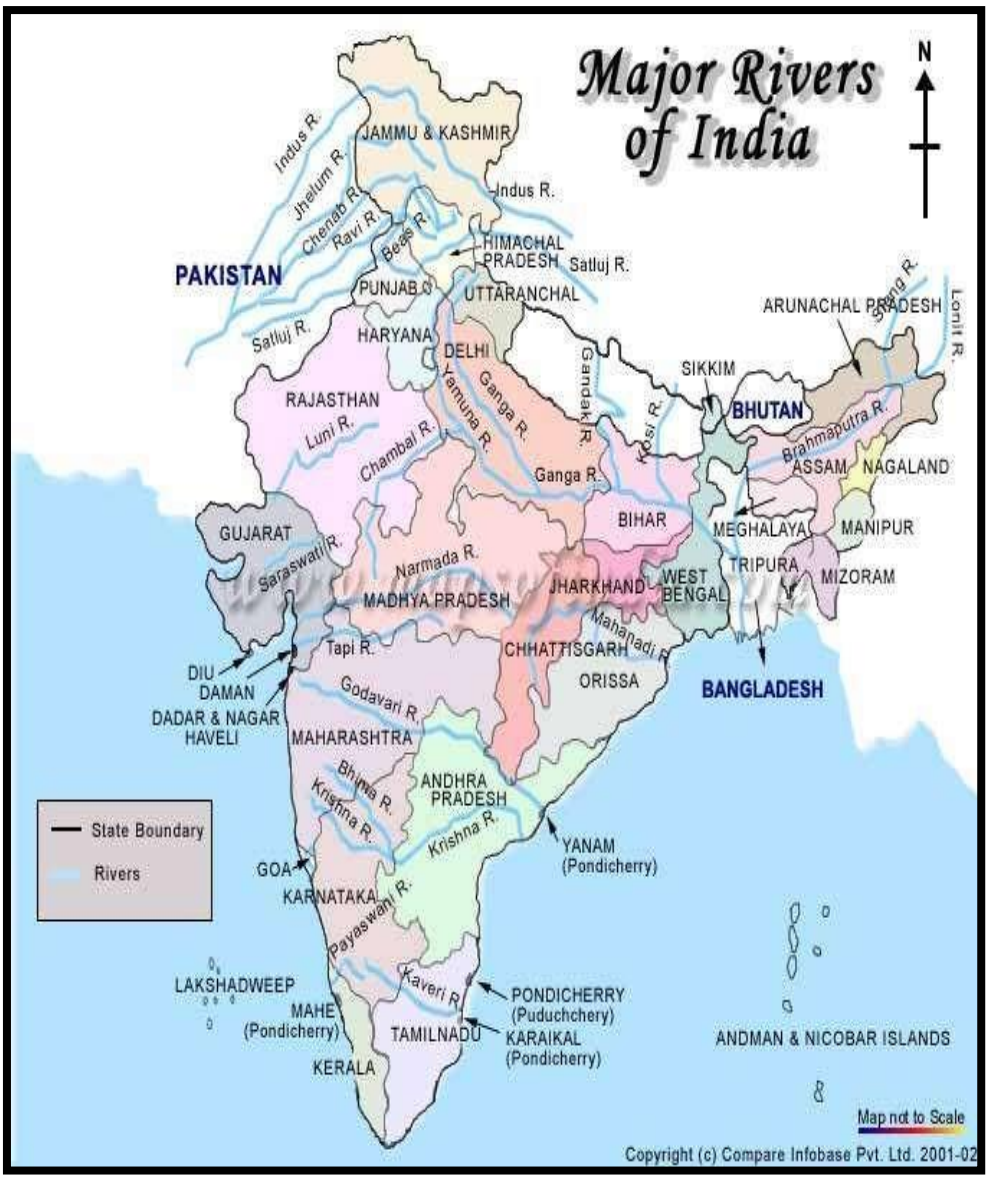

Source-http://www.touristplacesinindia.com/ganga-ganges/images/map-of-major-rivers.jpg

नक्शा– 1: भारत की नदी प्रणाली

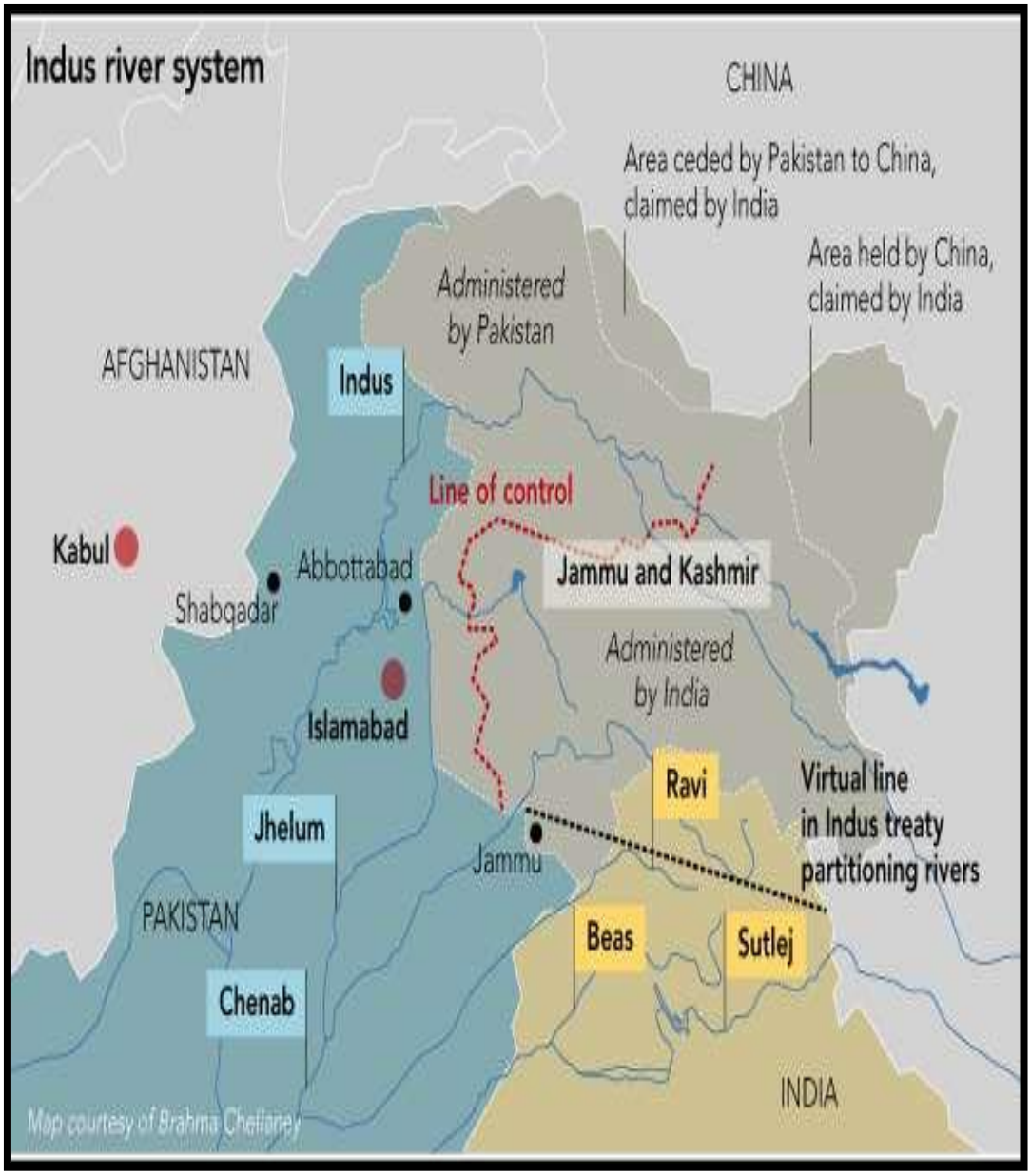

नक्शा– 2: भारत की नदी प्रणाली और अंतर्राज्यीय संबंध

देश के कई राज्यों में फैली इन नदी प्रणालियों को दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है: हिमालयी क्षेत्र की बारहमासी नदियाँ और प्रायद्वीपीय भारत की मौसमी नदियाँ। पहले वाले हिमालयी क्षेत्र की नदिया बर्फ और ग्लेशियरों को पिघलाकर प्रवाहित होती हैं। वे अपने प्रवाह में भटकाव या क्षेत्र में भूस्खलन और भूकंपीय गतिविधि के कारण नदी के पाठ्यक्रम में भारी बदलाव के कारण अक्सर अपने व्यवहार में अनिश्चित होते हैं। प्रायद्वीपीय नदियाँ बहुत कम ऊँचाई पर उत्पन्न होती

हैं और अधिक भूगर्भीय रूप से स्थिर क्षेत्रों से होकर बहती हैं। परिणामस्वरूप, उनका व्यवहार अधिक अनुमानित होता है। (जल योजना और परियोजना, जल और संबंधित सांख्यिकी, भारत सरकार, केंद्रीय जल आयोग, दिसंबर 2013)

नदी प्रणालियों के दो समूहों के प्रवाह पैटर्न भिन्न हैं। प्रायद्वीप में, प्रवाह मानसून के दौरान भारी निर्वहन की विशेषता है, इसके बाद शुष्क महीनों के दौरान कम निर्वहन होता है। हिमालयी प्रणालियों में, नदियों को बर्फ और हिमनदों को पिघलाकर प्रवाहित होती है। हालांकि मौसमी शुष्क मौसम के कारण वार्षिक बर्फ क्षय चक्र होता है, लेकिन प्रायद्वीपीय क्षेत्र में प्रवाह कभी भी उतना कम नहीं होता है।

हिमालय की मुख्य नदी प्रणालियाँ सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र हैं।

सिंधु प्रणाली

सिंधु नदी दुनिया की सबसे बड़ी नदियों में से एक है और इसमें छह प्रमुख नदियाँ शामिल हैं। यह तिब्बत में मानसरोवर के उत्तर में निकलती है और कश्मीर से होकर 650 किलोमीटर की दूरी तक उत्तर पश्चिम दिशा में बहती है। इसके बाद यह नंगा परहार से होते हुए पाकिस्तान में चली जाती है। मैदानी इलाकों में इसकी मुख्य सहायक नदियाँ झेलम, चिनाब, रावी, ब्यास और सतलज हैं। 1960 की सिंधु जल संधि के तहत, भारत और पाकिस्तान सिंधु नदी प्रणाली के पानी को साझा करते हैं, जिसमें तीन नदियाँ रावी, ब्यास और सतलज भारत को आवंटित की जाती हैं और तीन अन्य नदियाँ सिंधु, झेलम और चिनाब को सीमित ऊपरी नदी के अधिकार के साथ पाकिस्तान को आवंटित किया जाता है। यह नदी प्रणाली पाकिस्तान के साथ संबंधों में राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती प्रदान करती है।

गंगा प्रणाली

गंगा नदी देवप्रयाग से निकलती है जहाँ दो नदियाँ, अलकनंदा और भागीरथी मिलती हैं। यह पहले दक्षिण की ओर बहती है और बाद में गंगा डेल्टा के शीर्ष बनाने के लिए फरक्का के महान मैदानों के माध्यम से दक्षिण–पूर्व की ओर बढ़ती है। 2,525 किमी (लगभग 1,560 मील) के अपने लंबे पाठ्यक्रम में, यह कई सहायक नदियों से जुड़ती है। प्रमुख सहायक नदियों में से एक यमुना है, जिसका स्रोत गंगा के करीब है; घाघरा, जो गंगा के पूर्व में हिमालय में उत्पन्न होता है; और कोसी,

जो नेपाल के पर्वत में उत्पन्न होती है। यह भारतीय आबादी के लगभग 37 प्रतिशत के लिए पानी का योगदान देती है और 5,09,994 वर्गकिलोमीटर के कृषि योग्य भूमि क्षेत्र को कवर करता है।

ब्रह्मपुत्र–बराक प्रणाली

ब्रह्मपुत्र तिब्बत में उत्पन्न होती है जहां इसे त्संगपो के नाम से जाना जाता है। जब यह अरुणाचल प्रदेश की तलहटी से निकलती है तो इसे सियांग और दिहांग के नाम से जाना जाता है। यह दिबांग और लोहित नदियों द्वारा असम घाटी से होकर अपने प्रवाह में शामिल होने के बाद ब्रह्मपुत्र बन जाती है। नदी में गंगा या सिंधु की तुलना में छोटे जलग्रहण हैं और कई सहायक नदियों के पानी के साथ बांग्लादेश में प्रवेश करती हैं। दक्षिण की ओर बहते हुए मैदानी इलाकों से होकर गंगा में मिल जाती है, यह कई चैनलों में विभाजित हो जाती है और कई ब्रैड बनाती है, जो द्वीपों को घेर लेती है। ब्रह्मपुत्र–बराक बेसिन में प्रति व्यक्ति कुल पानी की उपलब्धता 11,782 क्यूबिक मीटर है, जिसका अभी तक उपयोग नहीं हो पाया है। भारत व चीन के मध्य यह नदी प्रणाली विवाद का विषय है, जो राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती प्रदान करती है।

प्रायद्वीपीय नदियाँ

प्रायद्वीपीय नदियाँ दो श्रेणियों में आती हैं, तटीय और अंतर्देशीय। तटीय नदियाँ तुलनात्मक रूप से छोटी धाराएँ हैं। इनमें से कुछ ही नदियाँ पूर्वी तट पर समुद्र में गिरती हैं, लेकिन 600 से अधिक पश्चिमी तट पर बहती हैं। हालाँकि पश्चिमी तट की नदियाँ केवल 3 प्रतिशत घाटियों को बहाती हैं, वे विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमें देश के जल संसाधनों का 14 प्रतिशत हिस्सा है (आरओआईसी, 1972:21)।

अंतर्देशीय नदियाँ बहुत प्राचीन हैं। वे अपने पाठ्यक्रमों में स्थिर और अच्छी तरह से परिभाषित हैं। पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ – जैसे नर्मदा, साबरमती, माही, लूनी और तापी – में संकरी, लम्बी जलधाराएँ हैं, जबकि पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ – महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, सुवर्णरेखा और ब्राह्मणी – की तुलना में कम अशांत और अधिक अनुमानित हैं।

गोदावरी

महाराष्ट्र राज्य में नासिक पहाड़ियों में इसका उद्भव होता है और दक्षिण–पूर्व दिशा में लगभग 1,500 किमी की दूरी तक बहती है, यह वर्धा, वैनगंगा और पेंगंगा जैसी सहायक नदियों की एक श्रृंखला प्राप्त करती है। प्रायद्वीप के सबसे दुर्गम क्षेत्र में, जिसके माध्यम से इसकी एक और सहायक नदी, इंद्रावती बहती है, गोंड जाति का घर है, जो आदिवासी द्रविड़ों में से एक है, जिसका मूल अभी भी विवाद का विषय है और जो आज भी पत्थर के औजार और खड़े पत्थर के स्मारक उपयोग करते हैं, सभ्यता की सीढ़ी में बहुत निचले पायदान पर हैं और जिनसे गोंडवानालैंड नाम दक्कन के प्राचीन टेबललैंड को सौंपा गया है। गोदावरी में बहने वाली अधिकांश धाराओं में, सोने की धुलाई एक सक्रिय उद्योग है, या रहा है। अपने मुहाने से लगभग 100 किमी दूर, गोदावरी भद्राचलम के पास, मुश्किल से 200 मीटर चौड़ी एक संकरी घाटी से होकर बहती है, जहां डेल्टा में पानी के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए लगभग 4 किमी लंबे एक एनीकट का निर्माण किया गया है ताकि इसे सबसे बड़ा चावल का भंडार बनाया जा सके। (लगभग 25000 हेक्टेयर)।

कृष्णा

पश्चिमी तट से 65 किमी की दूरी पर महाबलेश्वर के पास निकलते हुए, यह गोदावरी के समान परिस्थितियों में दक्षिण–पूर्व दिशा में बहती है। यह अपनी मुख्य सहायक नदी के रूप में उत्तर से भीम और दक्षिण से तुंगभद्रा नदियों को प्राप्त करती है। विजयवाड़ा (बेज़वाड़ा) में, नदी डेल्टा में फैली हुई है और पानी के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए एक तुंगभद्रा बांध का निर्माण यहां किया गया है, जो डेल्टा में चावल का भंडार बनाने के लिए है, और एक और भी बड़ा बांध, नागार्जुनसागर (विजयवाड़ा के पास), निर्माणाधीन है और पूरा होने पर, 809,000 हेक्टेयर की सिंचाई के लिए अतिरिक्त पानी देगा और 220,000 किलोवाट विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करेगा।

कावेरी

इसे दक्षिणा गंगा या दक्षिण की गंगा के नाम से भी जाना जाता है। परंपरागत रूप से, इसका स्रोत सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र के साथ हिमालय में मानसरोवर झील में

स्थित है, और पवित्रता में यह गंगा के बाद दूसरे स्थान पर है। दरअसल, यह कूर्ग की पहाड़ियों में उगता है और दक्षिण–पूर्व की ओर बहता है। यह एक ऐसी नदी है जिसका उपयोग प्राचीन काल से सिंचाई के लिए किया जाता रहा है और यह अनुमान लगाया जाता है कि बंगाल की खाड़ी में खुद को बर्बाद करने की अनुमति देने से पहले इसका लगभग 95 प्रतिशत सतही प्रवाह का उपयोग किया जाता है। 300 मीटर से अधिक लंबा, 15 से 20 मीटर चौड़ा और 5 से 6 मीटर ऊंचा, नदी की पूरी चौड़ाई में फैला हुआ ग्रैंड एनीकट, संभवतः ईसाई युग की दूसरी शताब्दी के प्रारंभ में बनाया गया था और इसने लगभग 25,000 हेक्टेयर एक क्षेत्र की सिंचाई के लिए कमान संभाली थी। एक आधुनिक एनीकट, जिसकी लंबाई लगभग 750 मीटर है, इसके कोलरून के मुख्य डिस्ट्रीब्यूटरी चैनल में बनाया गया है। नदी के ऊपर, मैसूर में, इसके प्रवाह को रोकने के लिए 12 बांधों का निर्माण किया गया है और लगभग 40 साल पहले, सिंचाई और बिजली उत्पादन के दोहरे उद्देश्य के लिए तमिलनाडु के सलेम जिले में मेट्टूर में भारत में अपनी तरह का पहला मेट्टूर बांध का निर्माण किया गया था। अपने मार्ग में, नदी तीन पवित्र द्वीपों को घेरती है,

- श्रीरंगपट्टन
- शिवसमुद्रम
- ग्रिरंगम

शिवसमुद्रम में ही इस सदी की शुरुआत में एशिया का पहला हाइड्रो–इलेक्ट्रिक पावर स्टेशन बनाया गया था। (राष्ट्रीय जल नीति 2002, भारत सरकार, जल संसाधन मंत्रालय)

इन मुख्य नदियों के अलावा, पेनाई, पलार, वैगई आदि जैसी छोटी नदियों की एक श्रृंखला है, जो सभी पूर्वी तट की जलोढ़ संपदा और चावल की खेती में योगदान करती हैं।

- पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों में नर्मदा और ताप्ती सबसे लंबी और सबसे महत्वपूर्ण हैं। पवित्रता के क्रम में, नर्मदा तीसरे स्थान पर है, केवल गंगा और दक्षिण गंगा से नीच है। एक तीर्थयात्री के लिए विंध्य के चरम

पश्चिम से अमरकंटक पर्वत पर नदी के स्रोत तक और वापस खंभात की खाड़ी में चलना, एक पूर्व की ओर तट पर और दूसरा तट पर पश्चिम की ओर चलना सर्वोच्च योग्यता का विषय माना जाता था। और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इसके दोनों किनारे असंख्य मंदिरों से जड़े हुए हैं। इसकी ऊपरी पहुंच में जहां यह विंध्य और सतपुड़ा के निशानों के बीच सीमित है, नर्मदा साफ पानी की एक शानदार धारा है, जो कभी–कभी झरनों में टूट जाती है और झरनों में छलांग लगाती है, जबलपुर के पास संगमरमर की चट्टानों में सबसे मनोरम है। एक बार जब यह अपने पहाड़ी रास्ते को छोड़ देती है, तो यह अपने आप चौड़ी हो जाती है और ब्रोच के नीचे यह लगभग 13 मील चौड़ा एक मुहाना बनाती है। बंदरगाह के लिए दृष्टिकोण पूरी तरह से ज्वार की दया पर है। देशी नौकाओं के लिए, नदी लगभग 100 किमी की दूरी के लिए नौगम्य है।

- प्रायद्वीप की उत्तरी सीमा के साथ, कई नदियाँ हैं जिनका उद्गम विंध्य और सतपुड़ा में है; उनमें से सबसे महत्वपूर्ण चंबल, बेतवा और सोन हैं, जिनमें से सभी मौसमी प्रवाह की विशेषता है, जो मानसून के मौसम में बड़े और शक्तिशाली होते हैं, लेकिन शुष्क मौसम में छोटे और महत्वहीन हो जाते हैं।
- अरब सागर में पश्चिम की ओर बहने वाली कई छोटी धाराएँ एक युवा अवस्था में हैं, ये सभी सक्रिय रूप से मूसलाधार धाराओं का क्षरण कर रही हैं। उनमें से कई रैपिड्स और झरनों में प्रचुर मात्रा में हैं, उदाहरण के लिए, शरवती पर जोग जलप्रपात (लगभग 280 मीटर ऊंचाई, दुनिया में सबसे ऊंचे में से एक) जिसे बिजली उत्पादन के लिए इस्तेमाल किया गया है, महाबलेश्वर का येना जलप्रपात (लगभग 200 मीटर ऊँचा), आदि।

पश्चिम की ओर बहने वाली इन नदियों में एक उच्च–सिर कटाव है, जो प्रभावी रूप से अपने सिर को पूर्व की ओर वापस कर रहे हैं, लगातार वाटरशेड को भी पूर्व की ओर धकेल रहे हैं, एक प्रक्रिया जो तब तक जारी रहेगी जब तक कि वाटरशेड अपनी वर्तमान असममित पश्चिमी स्थिति से प्रायद्वीप के मध्य तक कम नहीं हो जाता है। दोनों तरफ चैनलों के साथ ढाल लगभग बराबर है।

इस प्रकार भारत में सतही जल में बाईस प्रमुख नदी घाटियां हैं (सीडब्ल्यूसी, 2011)। इन बाईस नदी घाटियों में से, तेरह प्रमुख नदी घाटियाँ हैं जो 59 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई हैं, जिसमें 2.3 मिलियन 2 किमी का जलग्रहण क्षेत्र शामिल है।

भारत में जल की उपलब्धता और इसका राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव

भारत वर्ष में 5–6 महीनों में अच्छी तरह से वितरित अच्छी वर्षा के साथ धन्य देश है। देश में औसत वार्षिक वर्षा 1990 मिमी है, जिसकी विस्तृत श्रृंखला राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों में 100 मिमी और चेरापूंजी में 4000 मिमी के बीच है। देश में कुल उपलब्ध मीठा जल 4000 अरब घन मीटर प्रति वर्ष है। इसमें से 10.47 अरब घनमीटर पानी वाष्पीकरण के कारण नष्ट हो जाता है। वाष्पोत्सर्जन और अपवाह, उपलब्ध जल को घटाकर 1953 बिलियन घनमीटर और उपयोग करने योग्य जल को 1123 बिलियन घन मीटर तक कम कर देते है, यह ध्यान देने योग्य है कि वर्षा जल का केवल 18% ही प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाता है जबकि 48% नदी में प्रवेश करता है और इसका अधिकांश भाग समुद्र तक पहुँच जाता है। कुल उपयोग योग्य जल में से 728 बिलियन घन मीटर सतही जल से और 395 बिलियन घन मीटर पुनःपूर्ति योग्य भूजल द्वारा प्रदान किया जाता है। उपरोक्त आपूर्ति के मुकाबले, भारत में वर्ष 2013 के दौरान पानी की खपत 829 बिलियन घन मीटर थी, जिसके हर साल बढ़ने की संभावना है। इस प्रकार भारत निकट भविष्य में पानी की गंभीर कमी का सामना करने के लिए बाध्य है। इसका प्रभाव राष्ट्रीय सुरक्षा पर देखा जा सकता है।

चूंकि खपत के लिए पानी सबसे महत्वपूर्ण है, बढ़ती आबादी के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए खाद्य उत्पादन और पशुपालन को बढ़ाने के लिए सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध कराना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। बढ़ती जनसंख्या, एक गंभीर चिंता का विषय है क्योंकि इससे भविष्य में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता पर और बोझ पड़ेगा। चूंकि देश के भीतर उपलब्ध पानी वर्षा, भूजल भंडार और नदी घाटियों से निकटता के परिणामस्वरूप व्यापक रूप से भिन्न होता है, इसलिए अधिकांश भारतीय राज्यों में भविष्य में जल–तनाव और पानी की कमी होने की

संभावना है। इससे खाद्य सुरक्षा और भी बाधित होगी, क्योंकि पानी की कमी सीधे तौर पर कृषि उत्पादन को प्रभावित करेगी। जिससे भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा भी प्रभावित होगी।

जल संसाधनों का प्रदूषण एक अन्य प्रमुख चिंता का विषय है जो जल आपूर्ति के साथ–साथ मानव स्वास्थ्य की स्थिति को भी प्रभावित कर रहा है। पानी की अपर्याप्त आपूर्ति के अलावा, पानी की गुणवत्ता को लेकर भी चिंता है, जो स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। यह बताया गया है कि भारत में ग्रामीण आबादी द्वारा खपत किए जाने वाले पानी का 70% से अधिक डब्ल्यूएचओ मानकों को पूरा नहीं करता है। 50% ग्रामीण बीमारियाँ, 21% संक्रामक बीमारियाँ और 5 साल की उम्र के बच्चों में 20% मौतें सीधे तौर पर असुरक्षित पानी के सेवन से जुड़ी हैं।

रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से प्रदूषित भूजल की मात्रा के बारे में कोई सटीक अनुमान उपलब्ध नहीं है। समस्या न केवल उर्वरकों की अधिक मात्रा के प्रयोग की है बल्कि सिंचाई के लिए पानी के अत्यधिक उपयोग की भी है। नतीजतन, सिंचित क्षेत्रों में पीने के लिए उपयोग किए जाने वाले अधिकांश कुओं का पानी प्रदूषित हो जाता है। अत्यधिक सिंचाई भी मिट्टी की उत्पादकता को और नुकसान पहुंचा रही है, क्योंकि मिट्टी की निचली परतों तक पहुंचने वाला पानी और इस क्षेत्र में मौजूद लवण पानी में घुल जाते हैं। इसके बाद, ये लवण केशिका क्रिया के माध्यम से शीर्ष मिट्टी में आ जाते हैं। उच्च सांद्रता वाली ऐसी मिट्टी कृषि उत्पादन के लिए अनुपयुक्त, सॉडिक बंजर भूमि में बदल जाती है।

पानी के उपयोग के चालक

भारत में पानी की मांग निम्नलिखित कारणों से तेजी से बढ़ रही है

प्राथमिक कारण जनसंख्या है क्योंकि भारत की जनसंख्या 2005 में 1.3 बिलियन थी, जिसके तेजी से बढ़ने की उम्मीद है।

शहरीकरण के रूप में विकास पर प्रभाव एक अन्य कारण है।

- भारतीयों की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होगी। ऐसे में पानी की मांग बढ़ेगी।
- बढ़ते औद्योगीकरण से अधिक पानी की मांग होगी क्योंकि जीडीपी में इसके

योगदान में वृद्धि होगी।

- जल गहन नकदी फसलों पर कृषि विकास अधिक होगा और पानी की मांग में 80% की वृद्धि होगी। इसलिए भारत में जल आपूर्ति को प्रभावित करने वाली बाधाओं को दूर करना आवश्यक है।

जल क्षेत्र में चुनौतियाँ

भारत में जल आपूर्ति विभिन्न कारणों से एक चुनौती बनने जा रही है। गंभीर चिंता बढ़ती जनसंख्या है जिसके बढ़ने की संभावना है। बढ़ती जनसंख्या के साथ, देश में वार्षिक खाद्य आवश्यकता 250 मिलियन टन से अधिक हो जाएगी, अनाज की कुल मांग बढ़कर 375 मिलियन टन हो जाएगी, जिसमें पशुओं को खिलाने के लिए अनाज भी शामिल है। राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होना तय है। इससे भोजन और पानी की मांग बढ़ेगी।

भूजल का अत्यधिक दोहन एक और चिंता का विषय है। वर्तमान में, सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली मुफ्त बिजली आपूर्ति के साथ पानी पंप करने वाले 20 मीटर से अधिक कुएं हैं। यह कई राज्यों में पानी की बर्बादी को प्रोत्साहित करते हुए भूजल को कम कर रहा है। नतीजतन, देश में जल स्तर हर साल 0.4 मीटर कम हो रहा है। कई तटीय क्षेत्रों में, समुद्र के पानी की भारी घुसपैठ हुई है, जिससे उपजाऊ कृषि भूमि खेती के लिए अनुपयुक्त हो गई है। कुल मिलाकर, जल क्षेत्र में बुनियादी ढांचे का विकास बेहद धीमा रहा है और निवेश इष्टतम नहीं रहा है। इसके अलावा, खराब जलग्रहण क्षेत्र के विकास के कारण निर्मित जल सुविधाओं का उपयोग उप–इष्टतम रहा है जिसके परिणामस्वरूप भारी मिट्टी का कटाव और गाद और पानी का अकुशल उपयोग खुली नहरों में पानी के वितरण, बाढ़ सिंचाई और पानी के आधार पर चार्ज करने के कारण होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि सिंचाई का 70% से अधिक पानी अन्य शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई से वंचित करके बर्बाद हो जाता है। भारत में किसान परंपरागत रूप से प्रवाह सिंचाई का अभ्यास करते रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप पानी की भारी बर्बादी होती है, जबकि गंभीर मिट्टी का क्षरण होता है, उर्वरकों का रिसाव होता है, कीटों, बीमारियों और खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाता है और फसल की पैदावार कम हो जाती है। फिर भी, किसान

और नीति निर्माता इस अवैज्ञानिक प्रथा को बंद करने के प्रति गंभीर नहीं हैं। बाढ़ सिंचाई से सूक्ष्म सिंचाई में स्थानांतरित करने और जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे पानी की कमी को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

कृषि में जल उपयोग दक्षता के मामले में भारत अधिकांश विकसित देशों से काफी नीचे है। यह न केवल बाढ़ सिंचाई और अधिक पानी के कारण है, बल्कि अनुचित जल संरक्षण उपायों और फसल की किस्मों के कारण भी है जो अधिक पानी की मांग करते हैं। हालांकि, किसानों को पानी के संरक्षण के लिए प्रेरित नहीं किया जाता है क्योंकि ऐसा करने के लिए उनके लिए कोई प्रोत्साहन नहीं है। ग्लोबल वार्मिंग आगे चुनौती पेश कर रहा है, क्योंकि उच्च वाष्पीकरण के कारण फसलों के लिए पानी की आवश्यकता बढ़ जाएगी। हिमालय से निकलने वाली नदियाँ भारी बाढ़ की चपेट में हैं और बाद में पानी की गंभीर कमी का सामना करती हैं, जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित होता है।

देश भर में 60–80 मिलियन हेक्टेयर से अधिक वन भूमि और बंजर भूमि वर्षा जल को बनाए रखने में असमर्थ हैं, जो बदले में भूजल के पुनर्भरण और जैव विविधता के संरक्षण को सुनिश्चित करता। नतीजतन, इन पहाड़ों से निकलने वाली नदियां साल भर पानी के प्रवाह को बनाए रखने में असमर्थ हैं। भारी मिट्टी का कटाव न केवल बाढ़ का कारण बन रहा है बल्कि नदियों को अपना रास्ता बदलने के लिए भी मजबूर कर रहा है। ऐसी नदियाँ भविष्य में कृषि उत्पादन का समर्थन नहीं कर पाएंगी।